Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)
UGC Approved Sr.No.64259
Vol - V Issue-IV APRIL 2018 ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

'स्वप्नमयी' में चित्रित आधुनिक नारी की स्वतंत्रता : दशा और दिशा

डॉ, सुनिल महादेव चव्हाण
असोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
ए.सी.एस्. कॉलेज, लांजा ता. लांजा, जि. रत्नागिरी. 416701

आधुनिक काल मानवी जीवन का सबसे श्रेष्ठ और गौरवमय कालखंड रहा है। न केवल भारत में बल्कि समूचे विश्व में इस काल ने वैचारिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, कृषि व राष्ट्र विषयक नवनवीन सिद्धांतों का सृजन किया। मानव जीवन को नवीन वैचारिकि प्रदान की। औद्योगिक क्रांति ने तो विश्व का रुप ही बदल दिया। मनुष्य इस काल के कारण अन्तर्बाह्य बदल गया। इस युग का आगमन, विशेष लंबी काल रात्री के बाद सूर्योदय जैसा ही हुआ है। यही आधुनिक युग है कि जिसने विश्व के सैंकड़ों देशों को आज़ादी का सूरज दिखाया। देशों के साथ–साथ सदियों से गुलामी में जीनेवाले मनुष्यों को भी आज़ादी मिलीं।

भारत की कहें तो इस युग में न केवल भारत को आज़ादी मिली बल्कि सदियों से मानवाधिकार से बहिष्कृत शूद्र,पशु,नर,नारी, जो ताड़न के ही अधिकारी रहें, वे भी आजाद हुए। उनमें भी नया सूरज, नयी उमंगें जागृत हुईं। यह कार्य आरंभ में महात्मा जी फूले, राजर्षि शाहु महाराज आदि ने किया। शूद्रों के साथ–साथ नारी को युगों–युगों की कारा से मुक्त करने का प्रयास ही नहीं बल्कि अपने युग से उन्होंने पुरुष सत्ता से मुक्ति दिलायीं। इस कार्य को आज़ादी के बाद सही अंजाम दिया बाबासाहेब डॉ.आंबेडकर जी ने। अगर यह कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी कि यदि बाबासाहेब ना होते तो आज भी भारतीय नारी उसी प्रकार पुरुषी सत्ता की गुलाम होती जैसे आज़ादी के पूर्व थीं। कानून मंत्री के नाते आखिल भारत की स्त्री जाति को लोकतंत्र में समानाधिकार, नौकरी में प्रसुतिकाल अवकाश आदि के लिए उन्होंने संपूर्ण संसद को आड़े हाथों लिया था। इतना ही नहीं जब संसद के स्त्री विरोधी नेता इस बात का विरोध करते हैं तब भी वे अपने भारत की स्त्री स्वतंत्रता के मुद्दे से ज़रा भी पीछे नहीं हटे थें। यह इतना बड़ा कानून बाबासाहेब जी ने आखिल भारतीय स्त्री जाति के लिए किया था। आज नारी शिक्षित हुईं। स्वतंत्रता शिक्षा, समानाधिकार, सेवा में प्रसुतिकाल अवकाश आदि का संपूर्ण लाभ वह डंके की चोट पर उठा रही हैं। परंतु इस नारी स्वतंत्रता के लिए जिन्होंने संसद से लड़ कर अपना अनमोल योगदान दिया था, उन्हें वे न तो आज भी जानना चाहती हैं और न उन्हें याद करने की इच्छा रखती हैं।

आज आज़ादी का खूब उपयोग करने वाली स्त्री इस आज़ादी का और ज़िम्मेदारी का संतुलन बनाते समय अनेक बार ग़लति करते नज़र आ रही हैं। इसी सत्य को विष्णू प्रभाकर जी ने अत्यंत सहज़ता पर उतने ही संजीदगी से व्यक्त किया है। 'स्वप्नमयी' उनका एक लोकप्रिय परंतु आधुनिक नारी के बदलते जीवन मूल्यों का यह आलेखरुपी उपन्यास है।

स्वच्छंदी जीवन में नारी, जीवन में कैसे आगे बढ़ना है, कहाँ तेज़ चलना और कहाँ रुकना है, इस बात को सटीक समझ लें, तो वह जीवन के सितार के सात सुरों का आनंद उठा सकती है। परंतु इसे न समझें तो, मुँह की खानी या जान से हाथ धोनी पड़ती है, इसी जीवन के सार को विष्णू प्रभाकर व्यक्त करते हैं।

विष्णू प्रभाकर एक मनोवैज्ञानिक स्त्रीवादी लेखक रहे हैं। एक घटना के परिचय से प्रभावित होकर उन्होंने इसी बात को स्पष्ट करते हुए 'स्वप्नमयी' उपन्यास की रचना की। 'स्वप्नमयी' एक माँ की कहानी है, ''एक ऐसी माँ की जो स्वप्न तो देखती है, परंतु उसे जी नहीं पातीं।''[1] आज भी नारी अपना व्यक्तिगत जीवन ठिक–ठिक जी नहीं पा रही है। ''स्वप्न को चरितार्थ करने के लिए व्यक्ति को अपने उपर भी अंकुश लगाना होगा।''[2] आज बहुत कम नारियाँ अपने जीवन में सही समय पर अंकुश लगा लेती हैं। ''इस तरह के चारित्र की झलक 'स्वप्नमयी' की देवरानी में मिल सकती है।''[3]

'स्वप्नमयी' उपन्यास की नायिका अलका अंतर्जातिय, अंतर्धर्मीय और अंतर्राज्यीय विवाह करके देवसाल नायक से प्रेम विवाह करती है। नायक कलकत्ता में रहने वाला एक हिंदी का प्रोफ़ेसर है। आम तौर पर नारी स्वतंत्रता का विषय चर्चित होता है। पर यह नायिका अपनी माँ और पिता के मुक्त जीवन की सभ्यता और संस्कृति पा कर स्वच्छंद जीवन जीती रही है। ''उसके पिता ठेठ पंजाब से आए थें और उसकी माता ठेठ बंगाल की थी। कहीं पर देश में वे दोनों एक दूसरे से मिलें। बड़े घरों के थें। मिलना कोई मुश्किल नहीं था। उनकी शादी हो गई।''[4] उन दोनों की सभ्यता और संस्कार अलका में कूट–कूटकर भरे हैं। माता–पिता अपने नौकरी के कारण देश भर घूमे थें। वही स्वच्छंदता अलका में भी दिखाई देती है। पिता समाजवादी बने थें, उसी तरह अलका भी समाज सुधार में अपने को झोंक देती है। यहाँ यह कहना अन्यथा न होगा कि स्त्री हो या पुरुष, उन पर होने वाले संस्कार, बाह्य परिवेश उनके व्यक्तित्व को बनाते या बिगाड़ देते हैं।

'स्वप्नमयी' उपन्यास में चार स्त्री पात्रों का ज़िक्र आया है। चारों भी अलग–अलग वर्ग – परिवेश में रहनेवाली हैं। अतः चारों की स्वभाव विशेषताएँ भिन्न–भिन्न रही ह। भले ही वे एक ही काल में पली बढ़ी हैं। अलका की माँ एक स्वतंत्र स्वच्छंद विचारों की है, जो उस काल में प्रेमविवाह कर लेती है, जिस काल में ऐसा सोचना भी पाप माना जाता रहा। यही संस्कार स्वप्नमयी में रहे हैं। दूसरी ओर अलका का पति एक साधारण परिवार का युवक है ओर उसके पिता नहीं है। माता ग्राम परिवेश में रहने वाली ग्रामीण सभ्यता, संस्कार व रुढ़ी – परंपराओं की कट्टरपंथिया रही है। वह केवल इसे मानती ही नहीं, उसे जी जान से जीती भी है। इस सभ्यता,संस्कृति में काफी कुछ अंधश्रध्दाएँ भी हैं, परंतु वे उसे अपनी जान से प्यारी है। इसी कारण उसे प्रेमविवाह, अंतर्जातीय विवाह कतई पसंद नहीं है। वह बेटे की शादी के बाद अपनी बहू अलका का घर में स्वागत भी नहीं करती। बहू का स्वच्छंदी स्वभाव उसे बिलकुल पसंद नहीं है। बहू के घर आते ही उसे वह अपनी सभ्यता सिखाती है। अपनी परंपरा नुसार उसे पोशाख़ और ढ़ेर सारे गहने पहनने देती है। परंतु अलका भी बिना किसी संकोच के सास द्वारा दिये पोशाख़, गहने और उनकी बोली तथा व्यवहार भी अपना लेती है। इस समय वह परिवर्तन में विश्वास रखती नज़र आती है।

विष्णू प्रभाकर भारतीय नारी के बदलते जीवन मूल्यों का सटीक चित्रण करते हैं। नायिका अपनी संतान लड़का नहीं बल्कि लड़की ही चाहती है। उसे इतना विश्वास है कि उसे लड़की ही होगी। पति को सहज़ विश्वास के साथ वह कहती भी है – ''इस बार हमारे घर में कन्या आनेवाली है।''[5] सास को अलका का यह बर्ताव एक पागलपन मात्र लगता है। दिन–ब दिन वह अपनी बहू से दूर हटती है। आगे– पीछे वह उसे मुँह चढ़ाने लगती है। वह तो अपनी गुलामी को और पुरुष प्रधान संमोहन रुपी रुढ़ी, परंपरा, सभ्यता, संस्कारों को पहचान ही नहीं पा रही है। उसे वही सब प्रिय है जो वह युगों युगों से करती, सहती, वहन करती आ रहो हैं।

उपन्यास की नायिका अलका कमरे को नारी चरित्रों से सजाती है। जिसे देख कर उसकी सास अपने बेटे को व्यंग्य से कहती है –''हूँ, तो बेटी का बाप बनने वाला है।''[6] नायक पुराने युग की कुपरंपरावादी भावनाओं से भरी अपनी माँ को देखता ही रह जाता है। बेटे से प्यार और बेटी से घृणा करने वाली माँ की बात को महसुस कर नायक माँ को समझाने का प्रयास करता है –''माँ प्राचीन काल में जो कुछ भी आदर्श हमारा रहा हो, आज का युग उनकी कोई चिंता नहीं करता। सुना है राजपूत लोग कन्या को प्रसुति में ही गला घोट कर मार देते थ। किसी को दामाद बनाना वे अपना अपमान समझते थें।... लेकिन माँ यह सब तो समस्या से भागने जैसा था, निरा फूहड़पन! आज तो सब लोग इसका मज़ाक उड़ाते हैं।''[7]

यहाँ लेखक ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति का परिचय देते हुए यह स्पष्ट किया है कि, प्राचीन काल से ही हमारे देश में यही संस्कृति रही है, कि सत्ताधारी वर्ग लड़की को जन्म देना अपना अपमान समझता था। परंतु आधुनिक काल इस पुरानी सभ्यता, संस्कृति का मज़ाक उड़ाने लगा है, इसकी ओर लेखक संकेत करते हैं।

रुढी–परंपरावादी आधुनिक विचारधारा को कतई स्वीकार नहीं करतें। उपन्यास के नायक की माँ उसे डाँटते हुए कहती है –''तुम लोगों ने मज़ाक उड़ाने के सिवाय कुछ और सीखा है, हया शरम तो तुम लोगों में

रही नहीं।''[8] यहाँ लेखक यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि ''यह संस्कारों की गुलामी है और शब्दों की चोट है कि उस गुलामी की पकड़ को और भी कड़ा करती है।''[9] ऐसे परम्परावादी लोग आधुनिक परिवर्तन और विचारधारा का विरोध ही करते नज़र आते हैं। सास का बहू के प्रति रूखा व्यवहार होना, इसी बात को इंगित करता है। यह भी सत्य है कि आधुनिक विचारधारा पर चलने वाली और समय की सारथी नारी इन प्राचीन विचारों और संस्कारों की चिंता नहीं करती, वे तो परिवर्तन चाहती हैं। वह अपनी सास को आधुनिक जीवन शैली में परिवर्तित करना चाहती है। पर उसका पति जानता है कि ऐसा करना आत्मघात के समान है तभी तो वह अलका को अपनी माँ के साथ गाँव नहीं भेजता।

बार–बार पति द्वारा सचेत करने पर भी अलका गाँव चली जाती ही है। पर चंद दिनों में ही वह समझ जाती है कि वह तो यहाँ कैद ही हुई है। पति को बार–बार लिखे पत्रों में वह इसी बात की ओर संकेत करती है –''मैं जी जान से माँ की आज्ञा का पालन करने का प्रयत्न कर रही हूँ। मैं जब से यहाँ आई हूँ बाहर नहीं निकली हूँ। यद्यपि मेरा दम घुटने लगता है।.... माँ काफी अप्रसन्न दिखाई देती है और चारों ओर से रुढ़ियाँ मुझे जकड़ने के लिए अपना फ़ंदा डालती रहती है। यहाँ नारी का अर्थ कुलवधु भी नहीं है। है तो घर की दासी, जिसका स्थान भोजनगृह और प्रसुतिगृह तक ही सीमित है। मानो घर का काम और बच्चे पैदा करने के लिए ही वह ख़रीदी जाती है।.... मुझे खाने की आज्ञा है। बात करने की आज्ञा है। लेकिन आज्ञा नहीं है तो बाहर जाने की नहीं है। जब कभी मैं माँ से बाहर जाने के लिए कहती हूँ, तो वह हँस कर यह जवाब देती है, ''बहू यह शहर नहीं है, तुम्हें यहाँ बहू बेटियों की तरह रहना चाहिए।''[10] लेखक ने गाँव परिवेश का चित्रण कर यह स्पष्ट कर दिया है कि आज भी गाँव,शहरों में परिवर्तन की काफी गुँजाईश है। नारी भले ही आधुनिक युग में जी रही है, पर रुढ़ी–परंपराएँ और संस्कार–सभ्यता का भूत उसकी गर्दन पर ऐसा बैठा है कि उतारें ना उतरे। संस्कारों को ओढ़ना, संस्कारों में जीना, बस स्त्रियों का ही काम है, पुरुषों को तो खुली छूट है। अतः चाह कर भी नारी के जीवन मूल्यों में विशेष परिवर्तन लगभग असंभव है। हाँ, नारी यदि इस संदर्भ में क्रांति करें तो कुछ हो सकता है। पर वह तो पुरानी संस्कार बेड़ियों में अपने आपको जकड़े हुए है। फिर उसे कौन मुक्त करें ?

अलका की मात्र कंकाल–सी देह देख कर उसकी देवरानी नंदिता ने डॉक्टर और नर्स को भी बुलाया था। सास को यह बात नागवार लगती है। वह कहती भी है – ''पर इस घर में आज तक डॉक्टर और नर्स नहीं आयी।''[11] पति को देख कर अलका यह कबूल करती है–''मैंने आत्महत्या की है। मैं चाहती तो बच सकती थी। अपने ही प्रयोंगों के मोह ने मुझे छल लिया।''[12]

अलका एक सुंदर लड़के को जन्म देती है। पति को वह कहती है, ''इसे बचाने के लिए बड़ा यत्न करना पडा।''[13] अपने प्रयोग का अंतीम भाग वह अपने मृत्यु को मानती है। आज भी नारी अपने अन्याय गुलामी के बारे में ख़ामोश ही है। और मूक ही वह मृत्यु को प्राप्त करती है। न तो पति और न सास–ससुर और न ही अपने बच्चों के प्रति रोष या विद्रोह व्यक्त करती है। चाहे जितना भी उनका भावनात्मक,सांस्कृतिक धरातल पर शोषण होता रहे। रुढ़ी–परंपराओं के नाम पर तो उनके समुचे जीवन पर ही तरह–तरह की पाबंदियाँ लगती हैं। सास की परंपराओं का फ़ंदा जैसे–जैसे कसता गया, अलका अपने प्रयोग को शब्द बद्ध करती गयी –''बहुत सुना है, नारी के मूक बलिदान के बारे में बहुत कुछ पढ़ा है, अपनी आँखों से देखना चाहती हूँ, अपने हृदय में अनुभव करना चाहती हूँ...सचमुच यह स्थिति गला घोंटने जैसी है। मुझे लगता है जैसे मैं चीर काल से रुग्ण चली आ रही हूँ। कहीं मुक्ति नहीं है। शेष संसार से कोई संबंध नहीं। जीवन जहाँ जीवन के लिए असह्य हो उठा हो ऐसी यह जेल है। मैं बाहर भाग जाना चाहती हूँ।..... मुझे लगता है जैसे मैं गलती कर बैठी हूँ, मैं अपने हाथों से अपना गला घोट रही हूँ।''[14]

अलका की मृत्य संपत्ति या भूख़ के कारण नहीं मानसिक गुलामी के कारण होती है। वह अपने ही पैरों पर मानो कुल्हाड़ी चला लेती हैं। यदि वह चाहती तो इन ग्रामीण परंपराओं को सास के मिथ्या अहंकार और उसके कुल ख़ानदानी रिवाजों को तोड़ कर पति के पास जा सकती थी। पर वह सास को मना कर, सास की इच्छा से जाना चाहती थी। लेकिन सास अपने रिवाजों को जी जान से अधिक मानती है। वह बहू को घी

खिलाती है पर चार दिवारी में ही रखती है। अलका की मृत्यु के बाद वह –''बिना माँ के अब बच्चा कैसे पलेगा ?'' कह कर बेटे की दूसरी शादी की ओर भी वह संकेत करती है।

अलका के अंतिम क्रियाकर्म के बाद तुरंत ही सास के कार्यों को देख नंदिता सन्न रह जाती है। वह प्रोफेसर को कहती हैं –''अभी तुमने हत्यारों का दुःख देखा है लेकिन अब उनका हर्ष भी तो देखो।.... हत्यारे हमेशा हर्ष ही मनाते हैं। यह तुम्हारे कुल की रीति है।''[15] कहते हुए वह प्रोफेसर को अंदर एक कमरे में ले जाकर दिखाती है कि, अलका के कपड़े, गहने एक पलंग पर फैला कर उनकी पंड़ितो द्वारा इसलिए शादी की जा रही है कि अलका युवती थी। उसके बाद वह सब ब्राह्मणों को दान दिया जाएगा। नारी के मरणोत्तर भी उसकी स्वतंत्रता छीनी जाती है। लेखक इस कटु सत्य को अधोरेखित करते हैं। अपने मन की वेदना वे प्रोफेसर की वेदना के माध्यम से व्यक्त करते हैं –''यहाँ भी यौवन का मोल होता है। उफ्, वह मर गई ओर माँ के लिए यश प्राप्त करने का मार्ग बना गई, ब्राह्मणों के लिए ऐश्वर्य ओर विलासिता का द्वार खोल गई।''[16]

फिर नारी के जीवन में कौन से मूल्य आधुनिक काल में परिवर्तित हो रहे हैं। वह कौन सी स्वतंत्रता प्राप्त कर रही है। भौतिक सुख–साधनों के उपलब्ध होने से रीति रिवाजों में, रुढ़ी परंपराओं में तो बदलाव नहीं आ रहा है। आज को नारी खुद के ही भ्रम में रहने लगी है। इसी सत्य को विष्णू प्रभाकर व्यक्त करते हैं।

अलका द्वारा अपने पति को लिखे पत्र से यह भी स्पष्ट होता है कि, पति भी उससे मुक्ति चाहता है। पति को लिखे पत्र में 'आखिर तुम भी रुठ गए।' यह वाक्य इसी बात की ओर संकेत करता है। देश विदेशों में भी स्त्री की यही दशा रही है।

अतः निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि नारी को पहले और अंत में अपने आप पर ही भरोसा करना चाहिए। और सही समय पर सही निर्णय लेना चाहिए। तभी वह अपने जीवन में नवीन मूल्य और स्वतंत्रता ला सकती है, इसी तत्व को विष्णू प्रभाकर जी स्पष्ट करना चाहते हैं।

संदर्भ सूची

1. स्वप्नमयी– विष्णू प्रभाकर – पृष्ठ क्र –06
2. स्वप्नमयी– विष्णू प्रभाकर – पृष्ठ क्र –06
3. स्वप्नमयी– विष्णू प्रभाकर – पृष्ठ क्र –06
4. स्वप्नमयी– विष्णू प्रभाकर – पृष्ठ क्र –10
5. स्वप्नमयी– विष्णू प्रभाकर – पृष्ठ क्र –14
6. स्वप्नमयी– विष्णू प्रभाकर – पृष्ठ क्र –22
7. स्वप्नमयी– विष्णू प्रभाकर – पृष्ठ क्र –22
8. स्वप्नमयी– विष्णू प्रभाकर – पृष्ठ क्र –22
9. स्वप्नमयी– विष्णू प्रभाकर – पृष्ठ क्र –23
10. स्वप्नमयी– विष्णू प्रभाकर – पृष्ठ क्र –119
11. स्वप्नमयी– विष्णू प्रभाकर – पृष्ठ क्र –124
12. स्वप्नमयी– विष्णू प्रभाकर – पृष्ठ क्र –125
13. स्वप्नमयी– विष्णू प्रभाकर – पृष्ठ क्र –129
14. स्वप्नमयी– विष्णू प्रभाकर – पृष्ठ क्र –129
15. स्वप्नमयी– विष्णू प्रभाकर – पृष्ठ क्र –132
16. स्वप्नमयी– विष्णू प्रभाकर – पृष्ठ क्र –132